International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 2, March 2022 |

संस्कृत साहित्य में मानवीय मूल्य

डॉ. के. आर. महिया

सहायक आचार्य, संस्कृत, राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

सार

भारतीय साहित्य और संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ आधारशिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चार वेद और एक सौ आठ उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहना न होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार में वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं।

परिचय

मनुष्य इस संसार का उत्कृष्ट प्राणी है। उसके पास विचारशक्ति है, जिसके कारण वह संसार के अन्य जीवों-पदार्थों पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है। यही भावना प्रत्येक मानव में है।

मानवीय पुरुषार्थ एवं विचारण की भिन्नता से उनमें उत्कृष्टता, निम्नता, शासकत्व, शासितत्व, स्वामी-सेवक आदि स्तर स्वत: बन जाते हैं। संसार में असंख्य पदार्थ हैं, विषय हैं, भिन्न रुचिवाला लोक अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार अपने जीवन की सुगमता के लिए साधन जुटाता है। इसी कारण उनमें वर्ग-विभेद भी हो जाता है।

नव-समाज की यह विविधता उनके कार्य के अनुरूप दायित्व एवं अधिकार देती है। अपने-अपने दायित्व को पूरा करते हुए अधिकार पाना मानव जीवन का अंग बन जाता है। मानवों में प्रकृत गुणों की भिन्नता के कारण समाज में अन्याइयों- अधर्मियों-दुराचारियों का वर्ग भी पैदा हो जाता है। इस वर्ग की क्षयता के लिए समाज के हर व्यक्ति को जागरुक रहना होता है। यदि उपेक्षा हो जाती है, तो वह वर्ग फैलकर समाज में अशांति का वातावरण बना देता है, जिससे मानव-जीवन कष्टकर बन जाता है। मानव-मूल्यों की स्थापना उनका जीवनचर्या में आचरण इसी कारण आवश्यक हो जाता है। ये मानव-मूल्य मानव-जीवन को सुखमय बनाते हैं, रसमय-आनन्दमय बनाते हैं। समाज में व्याप्त भय को दूर करते हैं। अत: समाज को इनकी सतत् आवश्यकता है।

हम यहां मानव-मूल्यों पर संक्षिप्ततया विचार कर रहे हैं-

दया एक ऐसा मानवीय गुण है,जिससे व्यक्ति का चित्त दूसरे के दु:ख से द्रवीभूत हो उठता है। दूसरे को कष्ट में फंसा देखकर, दूसरे को दीन-विपन्न या घायल देखकर जो करुणामयी तरंगें हमारे मन में उठा करती हैं, उनसे व्याप्त मानस दशा दया कहलाती है। साधारणतया कहा जाय तो परदु:खकातरता दया है। दया के लिए आश्रय की जाति-पांति धर्म, वर्ग, निर्धन, धनिक आदि की आवश्यकता नहीं होती है। वह तो हृदय से उभरकर आंसू के माध्यम से व्यक्त होती है। वह सदा परार्थ होती है। मानव -स्वभाव में दया होने से कोई दु:खी व्यक्ति असहाय अवस्था में पड़ा नहीं रह सकता। दया के कारण समाज में दु:ख का निवारण होता है, अत: यह अत्यन्त आवश्यक है। उत्तर रामचरित नाटक में राम दया को मानव का उत्तम गुण मानते हैं, किन्तु वे लोक आराधना हेतु उसे भी छोड़ने में दु:ख का अनुभव नहीं करते।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतोनास्ति मे व्यथा॥

परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इस गुण के कारण मनुष्य अपना संचित धन, अपना समय, दूसरों की सेवा-सुश्रुषा तथा सहायता में लगाता है। उपकृत व्यक्ति उपकारी का ऋणी हो जाता है। वह भी उपकार करता है किसी अन्य का। इस प्रकार इस गुण से समाज में सभी व्यक्ति अपना-अपना कार्य सुगमता से पूरा कर लेते हैं। असहाय अवस्था में पड़े नहीं रहते हैं। परोपकार से न केवल व्यक्ति का भला होता है, अपितु निरर्थक प्रतिद्वन्द्विता, ईष्या-मात्सर्य से छुटकारा मिलता है तथा पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ता है। परस्पर स्नेही लोग जीवन की सरसता का अनुभव करते हैं।

परोपकार:र् कत्तव्य: प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं स्यात्क्रतुशातैरपि॥

सभी प्राणी अपने-अपने जीवन में कुछ न कुछ संचय करते हैं। अपने संचित में से दूसरे को देना त्याग है। परार्थ अपने अधिकार को निर्मूल्य रूप में समर्पित करना त्याग ही है। भारतीय संस्कृति में त्याग की अनेक गाथाएं सुनी जाती हैं। भगवान श्रीराम ने पिता द्वारा

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 2, March 2022 |

प्रदत्त राज्य को त्याग गर वनवास ले लिया था। अशांति एवं पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम त्याग है। त्याग से स्वार्थपरता एवं कमी आती है। आत्मा में संतोष बढ़ता है। पारस्परिक स्नेह बढ़ता है। दूसरे का क्रोध भी शांत होता है। त्याग-भावना से समाज में दु:खकारक अन्याय-अत्याचार रह की नहीं सकते। इसलिए त्याग को एक मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। त्यागो हि पुरूषो।

मानव में नौ रसों के भाव विद्यमान होते हैं, जिसके अंदर सात्विक गुण की प्रधानता होती है, उसमें से रस शीघ्र उदय हो जाते हैं। करूण रस की उत्पत्ति होने से व्यक्ति करूणाभिभूत हो जाता है। और वह दूसरे के दु:ख को अपना समझ लेता तथा उसके निवारण के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। निम्नलिखित पद्य करूण विप्रलम्भ का सुंदर उदारण है-
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषुया।
नादत्ते प्रियमण्ऽनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्॥
सेक्ष याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम्॥
सहिष्णुता नामक गुण क्रोध की विकृति को दूर करने के लिए है। मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु क्रोध है। नीति ग्रंथों में कहा गया है-
क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहाद्स्मृतिभ्रंशय:।
स्मृतिभ्रंशाद् बुध्दिनाशो बुध्दिनाशाद् प्रणश्यति॥
मनुष्य को विनाश से बचाने के लिए 'सहिष्णुता' नामक गुण है। यदि इसमें सहिष्णुता है, सहनशीलता है, तो हम दूसरे के द्वारा की जा रही अनियमितता पर क्रोध न करके उसकी भूल को सुधार लेंगे। अन्यथा कोप पर बैठे, तो दोनों ओर से अनर्थ ही हो जाएगा। इस कारण सहिष्णुता से समाज में शांति बनी रहती है।
भारतीय शास्त्रों में अहिंसा को बडी ग़हराई से देखा गया है। सामान्यतया किसी को न मारना अहिंसा है। परंतु, हम जानते हैं कि किसी भी प्राणी को मन से, वाणी से तथा कर्म से किसी प्रकार की चोट न पहुंचाना अहिंसा है। भारतीय जैन धर्म में अहिंसा व्रत का पालन करने के कारण ही साधु लोग कपड़े की पट्टी मुख पर बांधे रहते हैं कि कहीं कोई कीड़ा आदि उनके मुख में प्रवेश न कर जाए। हम केवल बड़े प्राणियों तथा मनुष्यों की ही हिंसा से नहीं बचते हैं, अपितु चींटी-जैसे क्षुद्र जीव की भी हिंसा से घबरा उठते हैं। यदि अहिंसा धर्म का पालन मानव-समाज द्वारा किया जाए, तो संसार में व्याप्त मार-काट आदि विसंगतियों से छुटकारा पाया जा सकता है।
अहिंसा परमो धर्म:।
अस्तेय नामक गुण का आशय है-चोरी न करना। बिना श्रम के अपना भोग्य अर्जित करना अस्तेय है। इस गुण को अपनाने से समाज में न केवल शांति रहेगी, अपितु निर्भयता भी आयेगी-अस्तेयो धर्म साधनम्।

अपरिग्रह नामक गुण का तात्पर्य है- आवश्यकता से अधिक संचय न करना। इस गुण के अपनाने से समाज में समानता, समाजवाद की स्थापना हो सकेगी तथा समाज की विपन्नता भी दूर होगी।

दान एक ऐसा गुण है, जिससे समाज में धन एवं वस्तु के वितरण में समानता आती है। इसके कारण प्रबल पुरुषार्थी या प्रयत्न करने वाले जन अपनी योग्यता एवं कुशलता से प्रभूत अर्थ संचय कर लेते हैं, परंतु दान गुण द्वारा समाज के अयोग्य एवं अकुशल व्यक्तियों को देकर आर्थिक विषमता की खाई को पाटने का कार्य कर देते हैं। इसका परिणाम होता है, धनवान, निर्धन के बीच असमानता अधिक नहीं रहने पाती है। निर्धनर् ईष्या नहीं कर पाता है, क्योंकि उसे अपना प्राप्तव्य स्वयं मिल जाता है। पौराणिक कथाओं में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आया है कि याचक ही नहीं मिले।

सन्तोष नामक गुण की शास्त्रों में अपार महिमा गाई गई है "जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान" अर्थात् मनुष्य में जब सन्तोष होता है, तो बाकी सारी सम्पत्तियाँ उसके सामने फीकी पड़ जाती हैं। समाज में इस गुण की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि संतोष से समाज में अपूर्व शांति, प्रेम तथा सौहार्द रहेगा। असन्तोष व्याप्त होने पर अनेकानेक दुर्गुण स्वत: पैदा हो जाते हैं। जब प्राप्ति से अधिक इच्छाएँ जाग्रत होती हैं तो असन्तोष पैदा होता है। कन्दै: फलैर्मुनिवरा: क्षपयन्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।
सत्य नामक गुण की संसार में अति प्रतिष्ठा है, क्योंकि सत्य से समाज में विश्वास बढ़ता है। नीतिग्रन्थों में कहा गया है, "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।" पुराणकाल में सत्य का अजीवन पालन करने वाले अनेक पूर्वज हैं। अपनी वचन-रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्याग दिए। सत्यवादी हरिश्चन्द्र का कीर्तिमान तो सारे संसार में ही प्रसिद्ध है। महाराज युधिष्ठिर भी सत्यवादी थे। पूर्वकालीन ऋषि महात्मा तो सर्वदा सत्य-भाषण ही करते थे। आज भी समाज में सत्य की प्रतिष्ठापना से बड़ा लाभ भी मिल सकता है। चारों ओर मिथ्या भाषण, मिथ्या प्रचार से जनता भ्रमित हो रही है। न्याय मंदिरों में असत्य का ही सहारा लिया जाता है, जिससे समाज में चारों ओर असन्तोष व्याप्त है। मानव का मानव के ऊपर से विश्वास उठ गया है। समाज में कार्य में बाधा आ रही है। अन्याय बढ़ रहा है। यदि सत्य का पालन सभी मानव करें, तो न न्याय की आवश्यकता पड़े और न रक्षा-कर्मियों की। समाज में शांति भी रहे और वह निश्चिन्त होकर पुरुषार्थ सिद्धि कर सकें।

क्षमा एक ऐसा गुण है, जो मानव द्वारा की गई भूल को सुधारने का अवसर देता है। क्षमा से भूलकर्ता पश्चात्ताप करता है, वह अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करता है। उसकी मानसिक दशा परिवर्तित हो जाती है। परन्तु यदि क्षमा के स्थान पर दूसरा भी क्रोध कर बैठे, तो निश्चित ही अनर्थ भी होगा और भूलकर्ता पुन: भूल करने के लिए दृढ़ हो जाएगा। पश्चात्ताप और भूल-सुधार करने का तो प्रयत्न होना ही संभव नहीं है। इसलिए क्षमा आवश्यक है। गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानसभरणं क्षमा।
लोभ मानव के लिए छ: शत्रुओं में परिगणित है। लोभ से व्यक्ति को अनेकश: हानियाँ सम्भव हैं। लोभ का विनाश का कारण तो शास्त्रों में सर्वत्र कहा गया है। लोभ होने से व्यक्ति दूसरे द्वारा ठगा जाता है। इसलिए निर्लोभता मानव के लिए सदा हितकारी है। कार्या कार्यबिचारो लोभविमूढस्य नास्त्येव।

विनम्रता मानव का ऐसा गुण है, जो दूसरे व्यक्ति को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। वह प्रशंसक बन जाता है। अत: विनयी जन सर्वत्र यशसिद्धि करते हैं। विद्यवान में विनम्रता की भावना की अनिवार्यता इसीलिए स्वीकार किया गया है। वृक्ष भी फलवान् होकर नम जाते हैं। सामर्थ्य और शक्ति पाकर विनयी होना मनुष्य की प्रशंसा का हेतु है। भवन्ति नम्रास्तरव: फलोद्गमै:।
स्नेह नामक गुण ऐसा है, जो मानव में आत्मीयता का भाव पैदा करता है, जीवन को सरल बनाता है। मानव-मन की रूक्षता को दूर करता है। इस गुण के कारण समाज में पारस्परिक सौहार्द बढ़ता है। स्नेह: वैरविनाशक:। विपत्तिकाल में जिस गुण से अपने मनोबल को दृढ़ रखा जाता है, उसे धैर्य कहा जाता है। इस गुण के कारण व्यक्ति दुर्गम विपत्ति को भी सहसा पार करता जाता है। इस गुण के कारण ही व्यक्ति का पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होता है। त्याज्य न धैर्य विधुरेऽपि काले।
विवेक नामक गुण व्यक्ति में अत्यावश्यक है। इसके द्वारा ही वह किसी पर सर्वांगीण विचार कर पाता है। विवेकशीलता ही मानव की पूंजी है। विवेकहीनता मनुष्य को निकृष्ट बनाती है। इसी विवेक केकारण समाज का बुद्धिजीवी वर्ग बड़े से बड़े विप्लव को टाल पाता है। नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रामिह विद्यते।
उत्साह नामक गुण विपत्ति के समय पूर्ण मनोयोग से किया गया प्रयत्न है, इस गुण से व्यक्ति के पौरुष की प्रशंसा होती है तथा समाज के लिए कीर्तिमान स्थापित होता है। उत्साह: कार्यसाधक:।
उदारता नामक गुण व्यक्ति में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भरता है। इस गुण के कारण ही मानसिक संकीर्णता का ह्रास होता है। मानसिक संकीर्णता मानव-समाज के लिए अत्यंत घातक है; क्योंकि यह क्षेत्रीयता विविध वादों का जन्म होने में सहायक बनती है, जिससे पारस्परिक विद्वेष बढ़ता है।

शतेषु जायते शूर: सहस्रेषु च पण्डित:।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥
आतिथ्य का गुण भारतीय संस्कृति में प्रधानतया स्वीकार किया गया है। वहां तो अतिथि को देव रूप ही माना गया है। इस गुण से समाज को असीम लाभ मिलता है। इसके द्वारा व्यक्ति आपातकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से पा लेता है। अतिथि देवो भव।
इस उक्त विश्लेषित मानव- मूल्यों को तो यहां कहा ही गया है, इनके आनुषंगिक अन्य भी मानव-मूल्य हैं। इन मूल्यों के संरक्षण से मानव-जीवन अत्यन्त सुगम, स्नेहिल तथा रसमय बनता है। इसमें किसी प्रकार के संदेह को कोई अवसर नहीं।

विचार-विमर्श

मानव जीवन की उत्कृष्टता:- चैरासी लाख योनियों में मानव जन्म को वेद वाङ्मय ने अत्यंत उत्कृष्ट सिद्ध किया है। उपनिषद का स्पष्ट कथन है कि-
'आहार निद्रा भय मैथुनादि
सामान्यमेतत् पशुभिः नराणां
ज्ञानम् नराणां अधिकम् विशेषः
ज्ञानेन शून्यः पशुभिः समानः'
उक्त कथन से ज्ञात होता है कि मानव जीवन में ज्ञान का कितना महत्व है। इसी ज्ञान का विकास मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु मूल्यों के रूप में होता है। अतः स्पष्ट है कि 'ज्ञानाधारित आचरणात्मक तत्वों का समाहार स्वरूप ही मूल्य हैं'। पूर्वोक्त उपनिषद वाक्य स्पष्ट करता है कि ज्ञान के अभाव में मानव पशु के समान हो जाता है। इसीलिये संप्रति हम 'मानव मूल्य' की बात ही करते हैं, क्योंकि हमें कहीं भी 'पशु मूल्य' जैसे पदबंध लक्षित नहीं होते हैं। मानव जीवन की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुये शंकराचार्य अपने ग्रंथ
'विवेक चूडामणि' में कहते हैं कि-
'दुर्लभम त्रयमेवै तद्दैवानुग्रह हेतुकम
मनुष्यत्वम् मुमुक्षत्वम् महापुरुष संश्रयः'
मूल्य की अमूल्य परिभाषा:- अर्वाचीन अर्थ-प्रधान युग में मूल्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हो रहा है, यथा 'दाम', 'कीमत', 'भाव' इत्यादि, जो किसी वस्तु की लेन-देन में ही प्रयुक्त होते हैं, जिनका आचरणात्मक जीवन मूल्यों से कोई संबंध नहीं है। "मानव जीवन को

उसके उद्गम से उत्स तक ले जाने वाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को ही मानव-मूल्य" कहा गया है, जिनके अंतर्गत धर्माचरण, सत्य वचन, परोपकार, दानशीलता, निष्काम सेवा, त्याग, शान्ति, अहिंसा, सौहार्द्र भावना इत्यादि परिगणितहोते हैं। इन मानव-मूल्यों की उत्कृष्टता के वर्णनार्थ ही संपूर्ण वेद वाङ्मय का प्रणयन शताब्दियों पूर्व हुआ है। प्रातःकाल में नेत्रोन्मीलन से लेकर मानव द्वारा अनन्त निद्रा में प्रवेश करने तक की उसकी दीर्घ जीवन यात्रा में इन मानव मूल्यों को अपनाने की अनिवार्यता का वर्णन वेद वाङ्मय ने फलश्रुति सहित किया है। इनके अभाव में जीवन निस्सार मरुस्थल के समान रह जाता है। इन मानव मूल्यों के साँचे में ढालकर जीवन को सार्थक बनाना ही हमारे सनातन साहित्य का एक मात्र उत्स रहा है।

मानव मूल्य और प्रासंगिकताः- संप्रति युवा पीढी की दिशाहीन जीवन शैली को देखकर उद्विग्न शिक्षाविद-समाज ने कदाचित वर्तमान के पाठ्यक्रमों में इन मानव मूल्यों को सम्मिलित करने का निर्णय लिया होगा, परन्तु शताब्दियों पूर्व ही हमारे क्रान्तद्रष्टा ऋषियों ने जीवन में इनकी अनिवार्यता एवं प्रासंगिकता के महत्व को पहचानकर इन्हें तत्कालीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में सम्मिलित ही नहीं किया, प्रत्युत इनके आचरण पर अत्यधिक बल भी दिया। संप्रति पश्चिमी सभ्यता की झंझा में दिशाहीन बहती जा रही युवा पीढ़ी के लिये इन मूल्यों का आचरण अनिवार्य है, क्योंकि आज की पीढ़ी उच्छृंखलता को उन्नति और विज्ञान के विकृत उपयोग को विकास मानने की बड़ी भूल करती जा रही है। परिणामतः भारतीय प्रजा का एक सिंह-भाग इन मानव मूल्यों से अनभिज्ञ ही रह गया है, अतः संप्रति शिक्षा-प्रणाली के निर्माताओं का परम कर्तव्य यह है कि वे संस्कृत भाषा के अध्ययन को महाविद्यालय स्तर तक अनिवार्य बना दें।

प्राचीन वाङ्मय और मानव मूल्यः- संस्कृत में प्रणीत हमारा संपूर्ण वाङ्मय वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता आदि के रूप में विद्यमान है, जिसमें हमारे जीवन को सार्थक बनाने के सभी उपक्रमों का उल्लेख विस्तार से है। इन उपक्रमों के रूप में वर्णित 'मानव मूल्यों' का उल्लेख संक्षेप में अधोलिखित पंक्तियों में किया गया है, यथा-

परोपकार और निष्काम सेवाः- जीवन एवं शरीर की प्राप्ति मानव-सेवा के लिये हुआ है, न कि भोग हेतु। इस संदर्भ में प्रकृति ही हमारा प्रथम गुरु है, यथा-

'परोपकाराय फलन्ति वृक्षः
परोपकाराय वहन्ति नद्यः
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकारार्थमिदम् शरीरम्।'

उक्त श्लोक से हमें अपने कर्तव्य का बोध स्वयमेव हो जाता है। हमारी संस्कृति में मानव सेवा को ही माधव सेवा मानने की विशिष्टता निहित है। महाभागवत में वर्णित एक आख्या से ज्ञात होता है कि महाराजा रन्तिदेव ने महाविष्णु के प्रकट होने पर उनसे मोक्ष न माँगकर जनता की सेवा करने की शक्ति प्रदान करने का वरदान माँगा,यथा-

'सेवा धर्ममिदम् सर्वम् ब्रोच्यते शास्त्र सम्मतम्
रंतिदेवो यथा सेवाम् अकरोत सर्वधा सदा'।

वाल्मीकि रामायण में भरत और लक्ष्मण का उदाहरण देते हुये कहा गया है कि-

'सेवया मानवानाञ्च कृतज्ञो भरतो भवत्
माधवश्यैव सेवाच कृतज्ञो लक्ष्मणो भवत'।

भाव यह है कि भ्राता की आज्ञा पर भरत ने पादुकाओं के माध्यम जनता की सेवा की और लक्ष्मण ने स्वयं माधव की सेवा की, इस प्रकार दोनों ने सेवा भावना की विशिष्टता का निरूपण किया।

धर्माचरण- ध्यातव्य है कि यहाँ प्रयुक्त 'धर्म' शब्द किसी मजहब के लिये न होकर मात्र 'कर्तव्य पालन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत के वन पर्व में एक शूद्र धर्मव्याध का आख्यान उल्लिखित है, जो मांस विक्रय का पेशा करता था, परन्तु उसने ब्राह्मण कौशिक को उपदेश देकर यह सिद्ध किया कि 'संसार में स्वधर्माचरण से श्रेष्ठतम तथ्य अन्य कुछ नहीं है, जिसका आचरण ही मानव के लिये परमोत्कृष्ट धर्म है।'

'जन्म संस्कार मात्रेण धर्म मार्ग प्रवर्तकः
उपदेशम् कौशिकाय धर्मव्याधो भवत्तदा'।

श्रीमद्रामायण में माता कौशल्या श्रीरामचन्द्र से अपने धर्म का आचरण करने का उपदेश देते हुये कहती है-

'यंपालयसि धर्मम् त्वम् धृत्याच नियमेनच
सवै राघव शार्दूला धर्मस्त्वामभिरक्षतु'।

भाव है कि 'हे राम! तुम जिस धर्म का आचरण करोगे, वही तुम्हारी रक्षा करेगा'। धर्माचरण को इस देश में अत्यंत प्रभावपूर्ण माना गया है। महाभारत के वन पर्व में यक्ष जब युधिष्टिर से अनेक प्रश्न पूछकर संतुष्ट होता है, तो वह कहता है कि 'हे युधिष्टिर! बुद्धिजीवियों ने स्पष्टतः कहा है कि इस संसार में स्वधर्माचरण से बढकर अन्य कोई तपस्या नहीं है, जिसका आचरणकर तुमने उसके महत्व को सिद्ध कर दिया है।', यथा-

'तपस्वधर्म वर्तित्वम् इति प्रोक्तम् बुधैस्सदा
तस्मात्तदेव कर्तव्यम् यदा धर्मेण द्वापरे'।
श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय 'कर्मयोग' के 35वे श्लोक में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गयी है, यथा-
'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावहः'।

त्याग भावनाः- श्वास क्रिया की भाँति मानव के लिये त्याग भावना अत्यंत सहज होनी चाहिये, क्योंकि श्वास और आहार की भाँति सब कुछ स्वीकार करने के उपरान्त यदि शरीर उनका किसी न किसी रूप में परित्याग नहीं करता है, तो वह उस शरीर के लिये हानिकारक ही सिद्ध होगाय इसी प्रकार हम जो कुछ भी संचित करते हैं उनका त्याग भी अनिवार्य है। जब हम 'अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा कर किन्हीं जरूरतमन्दों का उपकार करते हैं, तो उसे ही त्याग भावना' कहा गया है। कठोपनिषद का स्पष्ट कथन है कि कर्म, संतान अथवा धन के माध्यम अमृतत्व की स्थिति को कदापि नहीं पाया जा सकता है. केवल त्याग के माध्यम ही इसे प्राप्त किया जा सकता है, यथा-

'न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैकेन अमृतत्व मानसुः'।
महाभारत में राजा शिबि का आख्यान वर्णित है, जिसने एक कपोत की रक्षा के लिये अपने शरीर को काटकर बाज को मांस दिया था।
'त्यागेनैकेन ख्यातोभूत शिभिस्सर्व महान् तधा
कपोत रक्षणार्धाय स्वशरीरमदात्तदा'।
महर्शि दधीचि और महारथी कर्ण त्याग भावना के संदर्भ में उल्लेखनीय गौरवशाली चरित्र हैं। महर्षि दधीचि ने वृत्तासुर के संहार के लिये अपनी रीड़ की हड्डी को दान में दे दिया, जिससे वज्रायुध का निर्माण हुआ, तो दानी कर्ण ने अपने जन्मजात कवच और कुंडल को दान में देकर अपनी त्याग भावना का परिचय दिया।
वचन पालन द वचन पालन को यदि भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व कहा जाय तो कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस धरती पर सदियों से वचन पालन को जीवन से भी अत्यधिक महत्व दिया गया है, यथा-
'रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाय पर वचन न जाई'।
इसी तथ्य को राजा हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन में साकारकर 'सत्य हरिश्चन्द्र' बन गया 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' में स्पष्टतः कहा गया है-
'सत्य पालन धर्मेण हरिश्चन्द्रो भवत्तदा
राज्यम् सर्वम् परित्यत्वा श्मशानेच भवत्तदा'।
मत्स्य पुराण में राजा बलि का आख्यान विस्तार में वर्णित हैय जब राक्षस गुरु शुक्राचार्य को ज्ञात होता है कि राजा बलि ने वामन को तीन पग धरती दान देने का वचन दे चुका है, तो वह बलि को अपने वचन से मुकर जाने के कई तथ्य प्रस्तुत करता है, परन्तु बलि अपनी बात से टस से मस नहीं होता है । इसीलिये राजा बलि के बारे में कहा गया है-
'बली राजा भवतत्रा सर्वेभ्यो दानकर्मणा
त्यागी भूत्वातु लोकेच कीर्तिमान भवत्तदा'।
कविकुल गुरु कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंशम' के पंचम सर्ग में महाराज रघु की प्रशंसा में कहा कि रघु महराजमहर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स की इच्छापूर्ति के लिये चैदह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें दान में देकर अपनी वचनबद्धता का निरूपण किया, यथा-
'रघुवंशे महाराजा विश्वजिद्याग तत्परः
धनम् ददौच कौत्साय रघुस्तत्र महानुभूत'।

परिणाम

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के उत्कृष्ट जीवनमूल्यों, जीवन दर्शन, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं का प्रतिबिम्ब है। संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का संवाहक भी है। लगभग 3000 वर्ष पहले वैश्विक धरातल पर जब अपने विचार को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रारंभिक प्रयास चल रहा था, उस समय भारतभूमि पर वाग्देवी अपने सम्पूर्ण एवं उत्कृष्ट रूप में ऋग्वेद के सूत्रों के रूप में अवतरित हो चुकी थी। तब से अनवरत संस्कृत साहित्य सरिता अविरल एवं सहज गति से प्रवाहमान है। धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष जैसे पुरुषार्थों की परिकल्पना कर उसे व्याख्यायित करने वाली, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम के रूप में जीवन को एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 2, March 2022 |

के रूप में समाज को व्यवस्था एवं संतुलन प्रदान करने वाली, सोलह संस्कारों, तीन ऋणों, पंच महायज्ञों एवं गुरूकुल शिक्षा से जीवन को परिमार्जित करने वाली तथा अपने आध्यात्मिक जीवन दर्शन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण दर्शन है संस्कृत साहित्य। संस्कृत साहित्य में जीवन के श्रेय एवं प्रेय दोनों पक्षों का सामंजस्य है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास की सम्पूर्ण झांकी है संस्कृत साहित्य। संस्कृत साहित्य में मनुष्य के कत्र्तव्यों की विशद् व्याख्या की गई है। गीता जैसी अमृत वाणी संस्कृत में ही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का नारा संस्कृत साहित्य का ही अवदान है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में मनुष्य की ही नहीं पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधों को संरक्षण की भी चिंता की गई है। जीव हत्या नहीं करना है। किसी का अहित करना तो दूर की बात सोचने तक की मनाही है। अतः संवेदनशील समाज के निर्माण में संस्कृत साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्यमें एकता के सूत्र प्राप्त होते हैं। यह सूत्र सामाजिक एकता एवं समरसता का मूलाधार है। देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती है। इन भाषाओं की जननी संस्कृत ही है। संस्कृत ही सभी भाषाओं को बांधकर रखी है। यह समाज को जोड़ने वाली भाषा है। सूत्र ग्रंथों और स्मृतियों ने समाजवाद की अवधारणा को जन्म दिया। सामाजिक व्यवस्थाओं के सफल संचालन हेतु अनेक संस्थाओं का विशद वर्णन संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। विवाह, परिवार आदि संस्थाएँ उनके उत्तरदायित्व एवं मर्यादाओं की स्थापना संस्कृत साहित्य मेंजिस तरह से उल्लखित हैं वह अत्यन्त दुर्लभ है। आज पूरा विश्व संस्कृत साहित्य के उदात्त संदेशों को ग्रहण कर रहा है।

अनेक साहित्यिक रचनाएँ भी समय-समय पर लिखी गई जिससे तत्कालीन सामाजिक गतिविधियाँ उद्घाटित होती है। संस्कृत के महान कवि कालिदास के कुमार संभव, शाकंुतलम्, मालविकाग्नि मित्र जैसे ग्रंथों से गुप्त कालीन समाज और धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। भास, हर्ष, शूद्रक आदि संस्कृत के अनेक ऐसे लेखक व साहित्यकार हुए हैं जिनके ग्रंथों व साहित्यों में तत्कालीन समाज का चित्रण हुआ है। हर्ष की 'रत्नावली', 'नागानंद' और प्रिय दर्शिका उल्लेखनीय है। शूद्रककृत मृच्छकाटिका तदयुगीन समाज का विस्तृत चित्र सम्मुख रखता है। विशात्वदत्तकृत 'मुद्रराक्षस' और देवी चन्द्रगुप्तम् ऐसी साहित्यिक रचनाएँ हैं, जो इतिहास को भी स्पर्श करती है। इनके अतिरिक्त अनेक कथा-ग्रन्थ भी लिखे गए जिनसे सामाजिक और धार्मिक दशा का चित्रण होता है। गुणाढ्य कृत 'बृहत कथा' काउल्लेख अनेक लेखकों ने किया है, किन्तु यह ग्रंथि अनुपलब्ध है। बुद्ध स्वामी की 'वृहत कथा' क्षेमेन्द्र की 'वृहतकथामंजरी' और सोमदेव की कथासरित सागर नामक कृतियाँ भारत के उत्तर प्राचीन समाज और संस्कृति को विवृत करती है। दक्षिण के तमिल साहित्य से दक्षिण का सामाजिक इतिहास व्यक्त होता है। मंणिमेखलै, शिलप्पदिकारम्, तिरक्कुरलम्, नन्दिम्कालम्बकम् आदि ऐसे ही प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। जीवनचिन्तामणि में कवि तिरूत्तक्कदेवर ने राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक और धार्मिक जीवन को भीचित्रित किया है। [1]

स्मृतिकारों ने सूत्र साहित्य में वर्णित विषयों का विस्तार पूर्वक समयानुकूल श्लोकबद्ध विवेचन किया है। व्यक्तिगत तथा सामूहिक आचार व्यवहार का वर्णन गृह सूत्रों एवं धर्मसूत्रों में किया गया है। संस्कृत साहित्य में जिन सामाजिक आदर्शों, नियमों का निदर्शन प्राप्त होता है, वे ऋषियों द्वारा शताब्दियों के चिंतन मनन तथा अध्ययन का परिणाम है। चतुर्विध पुरूषार्थ की अवधारणा संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त होती है। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था की परिकल्पना एवं विस्तार संस्कृत साहित्य की ही देन है। मानव समाज को परिस्कृत एवं सुसंस्कृत बनाने हेतु गर्भकाल से लेकर मृत्यु पर्याप्त सोलह प्रकार के संस्कारों का वर्णन संस्कृत साहित्यों में विस्तार से किया गया है। जिसका पालन कर लोग आदर्श समाज की स्थापना कर सकते हैं।

संस्कृत साहित्य में व्यक्त है कि परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इस गुण के कारण मुनष्य अपना संचित धन, अपना समय, दूसरों की सेवा-सुश्रुषा तथा सहायता में लगाता है। उपकृत व्यक्ति उपकारी का ऋणी हो जाता है। परोपकार से न केवल व्यक्ति का भला होता है, अपितु निरर्थक प्रतिद्वन्द्विता, ईष्या-मात्सर्य से छुटकारा मिलता है तथा पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ता है। परस्पर स्नेही लोग जीवन की सरसता का अनुभव करते हैं। [2]

संस्कृत साहित्य में त्याग की अनेक गाथाएँ विद्यमान हैं। भगवान श्रीराम ने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को त्याग कर वनवास ले लिया था। अशांति एवं पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम त्याग है। त्याग से स्वार्थपरता में कमी आती है। आत्मा में संतोष बढ़ता है। पारस्परिक स्नेह बढ़ता है। दूसरे का क्रोध भी शांत होता है। त्याग-भावना से समाज में दुःखकारक अन्याय-अत्याचार कर नहीं सकते। संस्कृत साहित्य में त्याग को एक मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 2, March 2022 |

संस्कृत साहित्य में अहिंसा को बड़ी गहराई से अंकित किया गया है। सामान्यतया किसी को न मारना अहिंसा है। परंतु, हम जानते हैं कि किसी भी प्राणी को मन से, वाणी से तथा कर्म से किसी प्रकार की चोट न पहुँचाना अहिंसा है। यदि अहिंसा धर्म का पालन मानव-समाज द्वारा किया जाए, तो संसार में व्याप्त मार-काट आदि विसंगतियों से छुटकारा पाया जा सकता है।

संस्कृत साहित्य आचरणात्मकएवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर है, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकताको सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों कीसुदृढ़ आधारषिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। [3] मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चारों वेद और एक सौ आठ उपनिशद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहनान होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्त्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार से वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। [4]

भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों को सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को अलग रखकर आनन्द की अनुभूति की उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है। इसीलिए संस्कृत साहित्य जीवन की विशम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहता है। संस्कृत साहित्य भारत देश का नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के जनमानस कल्याण के लिए संकल्पित है। संस्कृत साहित्य के अनुसार समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा के विराजमान होने के कारण सब में समानता मानी गयी है। एतदर्थ मानवमात्र को परस्पर भाई-बन्धु के समान रहने की शिक्षा दी गयी है, साथ ही इस शिक्षा को जीवन में प्रायोगिक एवं जीवन रूप देने के लिए अहिंसा, करूणा, प्रेम, समता, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहृदय, सहयोग, समन्वय आदि सत्कत्र्तव्यों के पालन करने पर जोर दिया गया है। [5]

" हितेन सह इति सहितस्य भावः साहित्यम्। "

यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हित साधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मक ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाज दर्शन शूल-कांटों जैसी परम्पराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती है। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियाँ को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण समाज सुधार का चित्रण और समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधार शिला रखता है इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेंदु, निराला, नागार्जुन तक की शृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिससे आगे चलकर उन्होंने अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है -'जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।'

संस्कृत साहित्य हो या हिन्दी-साहित्य दोनों ही साहित्यों ने समाज जागरण के लिए अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालीन स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की है। साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित है। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही है। हालांकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परन्तु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 2, March 2022 |

निष्कर्ष

विषय की विशदता एवं स्थानापन्नता को दृष्टि में रखते हुये प्रस्तुत आलेख में विषय पर विहंगम दृष्टिपात मात्र किया गया है। वेद वाङ्मय में प्रयुक्त आचरणीय जीवन मूल्यों का अन्तिम उत्स मानव को पूर्ण शान्ति प्रदान करना ही है, क्योंकि भारतीय जीवन-दर्शन संतुष्टि और मानसिक शान्ति में ही परमानन्द को निहित मानता आ रहा है। अतः कहना न होगा की वेद वाङ्मय में वर्णित जीवन मूल्यों के आचरण के माध्यम इसी परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करना ही हमारा गंतव्य रहा है। संप्रति अर्वाचीन जीवन में व्यक्ति समस्त संपदाओं और भोगों के होते हुये भी जिस शून्यता को महसूस कर रहा है, वह यदि उससे मुक्त होना चाह रहा है, तो उसके लिये इन उपरोक्त जीवन मूल्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। वर्तमान युवा पीढी भी जब तक विज्ञान के आकर्षक भ्रमजाल और तथाकथित पश्चिम की 'सभ्यता' से स्वयं को मुक्त नहीं कर पायेगा, तब तक उसके लिये शान्ति मृगतृष्णा ही रहेगी । इसी तथ्य को 'अमृत बिन्दोपनिषद' में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, यथा-

'मनयेव मनुष्याणाम् कारणम् बन्ध मोक्षयोः
बन्धाय विशयासक्तम् मुक्त्यै निर्विषयम स्मृतम्।
मनस्सशान्तिरेवश्यात् मानवानाम् विशेषतः
शिवम् चैव शुभम् भूयात लौकिके पारलौकिके'।

संस्कृत - साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता है कि यह मानवता के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वेद की शुरूआत ही समस्त मानवों के कल्याण के संकल्प के साथ होती है, 'अग्निमीहे पुरोहितम् ' इसका भावार्थ यह है कि समस्त मानवों का कल्याण करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ। वैदिक ऋषि विश्व समाज कल्याण के लिए सुमति और सद्भावना की प्रार्थना करता है, " विदधातीति हितम्। "

हम पाते हैं कि साहित्य वह सषक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप सेप्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। यह समाज को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओरयह सत्य है सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केन्द्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ - साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है। इस प्रकार साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है।

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. मिश्र , जयशंकर , प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास , बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी , पटना , 2006, पृ .- 5-6
2. चैधरी , रामविलास , संस्कृत साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास , मोतीलाल बनारसी दास , नई दिल्ली , 1991, पृ .- 167
3. कवठेकर , प्रभाकर नारायण , संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्भव एवं विकास , चैखम्बा , वाराणसी , 1981, पृ .- 202
4. उपाध्याय , बलदेव , आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास , सप्तम खण्ड , चैखम्बा , वाराणसी 1976, पृ .- 613
5. शुक्ल , हीरालाल , आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास , चैखम्बा , वाराणसी , 1978, पृ .- 70